नियमसार। समयसार की गाथा है न?

**सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।**
**तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं।।**

**'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'...** आहाहा! दो ही बात। स्वयं आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप एक ही वस्तु; इसके अतिरिक्त दूसरा सब पर है। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प से लेकर परपदार्थ, सब पर हैं। **'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'—ऐसा जानकर...** पर हैं – ऐसा जानकर.... आहाहा! **प्रत्याख्यान करता है...** अर्थात् उनमें जुड़ता नहीं है और ज्ञान में रहता है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा में रहता है। **इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है...** वह ज्ञानस्वरूप आत्मा, वह प्रत्याख्यान है।

बाहर के क्रियाकाण्ड में जो विकल्प उठे, प्रत्याख्यान और पच्चखाण करे, वह कोई पच्चखाण (त्याग) नहीं है। ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा स्वपदार्थ; परपदार्थ से अत्यन्त भिन्न, ऐसे ज्ञानभाव में स्थिर रहना; वह ज्ञानभाव, रागरूप नहीं हुआ; इसलिए छोड़ना – ऐसा भी

नहीं कहा। उसमें स्थिर रहना। आहाहा! है ? **ऐसा जानकर...** वापस ऐसा लिया है। पर है - ऐसा जानना; तो जानने का स्वभाव तो अपना है, अपने में है। रागादि परपदार्थ पर हैं। मैं स्व ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ—ये दो मुख्य लक्षण। सम्यग्ज्ञान ख्याल में आवे और अतीन्द्रिय आनन्द ख्याल में आवे, यह ज्ञान और आनन्द मैं हूँ। ऐसा जहाँ प्रत्याख्यान में आया; इसलिए वह त्याग जानकर प्रत्याख्यान / त्यागता है। त्यागता है, इसका अर्थ यह कि **इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है...** उस ज्ञान में, ज्ञान आत्मा में रहे, वह प्रत्याख्यान है। ऐसी बात है। इसका नाम प्रत्याख्यान है।

आत्मा जिस स्वरूप से है, उस स्वरूप से रहना; पर को जानना, जाना, परन्तु स्व में रहना। ज्ञानस्वरूप है, उस स्वरूप में रहना, वह ज्ञान प्रत्याख्यान है; वह ज्ञान पच्चखाण है। हाथ जोड़े और विकल्प उठा, इसलिए प्रत्याख्यान हो गया, वह प्रत्याख्यान नहीं है। आहाहा! प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में आता है न ? गुरु उसे (दीक्षार्थी को) अट्ठाईस मूलगुण देते हैं। आता है ? यह चरणानुयोग की बात व्यवहार से बात है। तत्त्वदृष्टि के द्रव्यानुयोग की दृष्टि से तो वह देता नहीं और लेता नहीं। राग है, ये पुण्य-पाप के भाव हैं, वे पर हैं। वे पर हैं—ऐसा जाना, तो ही स्वयं अपने में स्थिर होता है, इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा!

अब चरणानुयोग के अधिकार में ऐसा आता है, गुरु उसे अट्ठाईस मूलगुण देते हैं, वह अंगीकार करता है। निमित्त से कथन है। अन्दर यह व्यवहार होता अवश्य है न ? परन्तु वह वस्तुस्थिति नहीं है। वस्तुस्थिति तो ज्ञानस्वरूप को ज्ञान में (से) हिलने न देना, उसे राग और पुण्य-पाप में हिलने न देना, उनमें जुड़ना नहीं। ज्ञान, ज्ञान में रहना; आत्मा, आत्मा में रहना, आत्मा के स्वरूप में रहना, वह प्रत्याख्यान है। अहो! ऐसी कठिन व्याख्या है।

**( अर्थात् अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था... )** राग के अभावरूप अवस्था। आहाहा! क्योंकि आत्मा में एक अभाव नाम का गुण है। इसलिए अपने गुण से राग के अभाव-स्वभावरूप से परिणमना, इसका (आत्मा का) अभाव-स्वभाव का गुण है। आहाहा! समझ में आया ? राग का त्याग करूँ—ऐसा भी नहीं। राग के त्याग के अभावस्वभावरूप, अभावस्वभाव गुण है। आत्मा में अभावस्वभाव गुण है। यह दृष्टि द्रव्य के ऊपर पड़ने पर और उसमें एकाग्र होने पर रागरूप न होना और ज्ञानरूप होना, इसका

नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! अब यह पच्चखाण वापस यह पर्यूषण में सब प्रतिक्रमण, अपवास करे। चन्दुभाई! यह सब तुम वहाँ क्या करते हो? प्रतिक्रमण करे, अपवास करे, दो अपवास किये, तीन उपवास किये, यह प्रत्याख्यान किया। यहाँ यह कहते हैं, वह प्रत्याख्यान नहीं है; वह तो विकल्प है। आहाहा!

स्व को जानते हुए पर को जानना। स्व को जानने में रहते हुए पर को जानना। ऐसा जानकर पररूप न होना, द्रव्यस्वभाव पररूप हुआ नहीं। यह स्वभाव पररूप हुआ नहीं। उसरूप उसे होना, उसरूप स्थिर होना, इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! ऐसी कठिन व्याख्या है। नये लोगों को कठिन लगता है।

**मुमुक्षु :** ऐसी व्याख्या तो आपने की है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसमें है या नहीं? बापू! आहाहा! प्रभुता! प्रभुता प्रभु तारी तो खरी। प्रभु! तेरी प्रभुता तब वास्तविक... मुजरो मुज रोग ले हरि। इस राग के रोग को हरकर स्वरूप में स्थिर हो, तब तेरी प्रभुता वास्तविक कहलाये। आहाहा! तेरी प्रभुता अर्थात् गुण है। आत्मा में प्रभुता नाम का अनादि-अनन्त गुण है, उस प्रभुता का गुण और एक अकार्यकारण नाम का गुण है, इसलिए राग छूटना और स्थिर होना, ऐसा भी नहीं है। इसलिए राग का छूटना, वह कारण और स्थिर होना कार्य, यह नहीं। वह तो अकार्यकारण नाम का गुण है। राग के कारण के अभाव-स्वभावरूप परिणमित होना... आहाहा! ऐसा उसका स्वरूप ही है।

सच्चिदानन्दस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा, अनन्त गुण का सागर, हीरा वह जहाँ पकड़ने में आया, उसमें स्थिर हुआ, उसने पर को जाना कि यह पर है परन्तु पररूप जाना और जो पररूप हुआ नहीं। पर को जाना, इसलिए पररूप हुआ नहीं; स्वरूप से हुआ। आहाहा! इसका नाम पच्चक्खाण है, इसका नाम त्याग है। राग का त्याग इस प्रकार नाममात्र कहा जाता है। आहाहा! भगवान आत्मा रागरूप हुआ नहीं। चैतन्यस्वरूप जानने-देखनेवाला स्वभाव पूर्ण; यह राग अचेतन है, उस अचेतनरूप स्वरूप। स्वरूप, अपना स्वभाव, स्व-अपना स्वभाव, ज्ञान-दर्शन-आनन्द वह स्वभाव है। स्व-भाव अर्थात् अपना भाव है। रागादि अपना भाव नहीं है। आहाहा!

यह अपना जो स्वभाव है। स्व-भाव अपना भाव है। आत्मा का अपना

ज्ञानस्वभावभाव, स्वभाव, अपना भाव, आनन्दभाव, शान्तभाव, वीतरागभाव, श्रद्धाभाव। उस भावरूप से स्थिर रहना... आहाहा! मात्र जाना कि यह राग है, वह पर है। यह भी ज्ञान की पर्याय की ताकत से स्वयं अपने में जाना। उसमें स्थिर हुआ, इसका नाम प्रत्याख्यान है। ऐसी व्याख्या है। यहाँ तो प्रत्याख्यान सरल हो पड़ा है। आठ वर्ष की लड़की हो तो सामायिक करके बैठे, प्रतिक्रमण करके बैठे, पच्चक्खाण करे, प्रत्याख्यान करे और फिर सेठ पैसे दें। इसने पाँच सामायिक की, प्रतिक्रमण किये और दो-दो रुपये दो, पाँच-पाँच रुपये दो, जाओ। आहाहा! यह तो सब शुभभाव की बातें, बापू!

स्वद्रव्य को अपनी स्थिरता के लिये परद्रव्य की कोई अपेक्षा ही नहीं है। आहाहा! यह भगवान आत्मा चैतन्य जलहल ज्योति प्रभु स्व स्वयंभाव, स्व का स्वयं अपना निजभाव, उस भाव में स्थिर होना, वही त्याग है, वही राग का त्याग कहने में आता है। उसका नाम प्रत्याख्यान है। है इसमें? **( अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था... )** ज्ञान अर्थात् अपना स्वभाव जो शुद्ध त्रिकाल, उस गुण की अवस्था होना, वह प्रत्याख्यान है। उस गुण की निर्मल अवस्था होना... आहाहा! सूक्ष्म पड़े परन्तु मार्ग यह है। दूसरी बातें सरल लगें। यह सब सरल राग है। सरल... सरल... राग। यह तो हीरा है। आहाहा!

चैतन्य हीरे को, उसकी कीमत करके उसमें रहना... आहाहा! पर को जानना पररूप है इतना। **ऐसा नियम से जानना।** इसका नाम प्रत्याख्यान है—ऐसा नियम से जानना। ऐसा नियम से, निश्चय से, वस्तु की मर्यादा का नियम ही यह है। वस्तु की मर्यादा ही यह है। आहाहा! वस्तु... वस्तु... स्वयं स्व...भाव। स्वभाव अर्थात् अपना भाव, उसकी अवस्था होना, इसका नाम प्रत्याख्यान है। यह नियम से, निश्चय से ऐसा जानना। निश्चय से, यथार्थ से यह बात सत्य है। आहाहा! अब अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

**प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्त-सम्मोहः।**
**आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।।**

यह समयसार में अन्त में प्रत्याख्यान अधिकार है न? वहाँ यह गाथा है। **( प्रत्याख्यान करनेवाला ज्ञानी कहता है कि— )** आहाहा! प्रत्याख्यान करनेवाला ऐसा भाता है कि **भविष्य के समस्त कर्मों का प्रत्याख्यान करके ( -त्यागकर ),....** भविष्य के समस्त राग के विकल्प आदि त्यागकर। यह वर्तमान प्रतिक्रमण और भविष्य का प्रत्याख्यान। भविष्य

के उस किसी भी विकल्प को सर्वथा त्याग कर... आहाहा! **जिसका मोह नष्ट हुआ है...** जिसका मिथ्यात्व नाश हुआ है, जिसकी भ्रमणा नाश हुई है। राग, वह मैं और राग की एकता, उसका जिसे नाश हुआ है, उसे प्रत्याख्यान होता है। आहाहा! यह तो शान्ति से समझने जैसी बात है। भाई!

**जिसका मोह नष्ट हुआ है-ऐसा मैं...** ऐसा मैं... आहाहा! जिसकी राग की एकता नष्ट हुई है। राग का विकल्प सूक्ष्म में सूक्ष्म, उसकी एकता जिसकी नाश हुई है, ऐसा मैं... आहाहा! **निष्कर्म ( अर्थात् सर्व कर्मों से रहित ) चैतन्यस्वरूप आत्मा में...** कहते हैं किसमें रहता हूँ? सब ही त्याग कर, सब ही छोड़कर **चैतन्यस्वरूप आत्मा...** चैतन्य का स्व... रूप आत्मा, उसका रूप ही चैतन्य है। आत्मा का रूप ही चैतन्य है। आहाहा! दया, दान, व्रत, विकल्प आदि वह आत्मा का रूप नहीं है, आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप ऐसा जो आत्मा। आत्मा कैसा? - कि चैतन्यस्वरूप आत्मा। यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे चैतन्यस्वरूप आत्मा नहीं हैं; वे तो अनात्मा हैं। आहाहा! राग का विकल्प उठता है, वह अनात्मा है। **चैतन्यस्वरूप आत्मा में आत्मा से ही...** आत्मा से ही। आत्मा में निर्मल वीतरागी स्वभाव से ही। आहाहा! आत्मा निजस्वभाव शुद्धचैतन्य, उसे **आत्मा में आत्मा से ही...** जो स्वभाव जिसका शुद्ध है, वीतरागी स्वभाव है। स्व / अपना भाव वीतरागी है। वीतरागी भाव द्वारा आत्मा में स्थिर होता हूँ। आहाहा! यह प्रत्याख्यान। कठिन पड़ता है, हों! सम्प्रदायवाले सुनते हुए... यह व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... उड़ जाता है। व्यवहार रहता ही है। जाननेयोग्य व्यवहार रहता है, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा!

आगे कहा न? जानकर। आया न? जानकर कहा न? आहाहा! पहले '**अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'—ऐसा जानकर...** आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर अनन्त परपदार्थ, उन सब अनन्त से मैं पृथक्। मुझमें उन अनन्त में से कोई अंश भी नहीं है और मेरे में जो अंश हैं, अनन्त गुण का स्वरूप, स्वभाव वह पर में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। **चैतन्यस्वरूप आत्मा में...** आत्मा की व्याख्या की है। कैसा आत्मा? - कि चैतन्यस्वरूप। यह दया, दान, व्रत, भक्ति स्वरूप नहीं। वह तो राग है। आहाहा! यह राग आवे परन्तु जाननेयोग्य है। ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य आता है। ऐसा

चैतन्यस्वरूप वह आत्मा, उस **आत्मा से ही ( -स्वयं से ही )...** अर्थात् वीतरागभाव से ही है। आहाहा!

रागभाव रहित वीतरागभाव से, क्योंकि स्वयं वीतरागस्वरूप है। वह वीतरागस्वरूप ऐसा आत्मा अर्थात् चैतन्यस्वरूप ऐसा आत्मा, चैतन्यस्वरूप की परिणति द्वारा... आहाहा! है? यह तो **( -स्वयं से ही ) निरन्तर वर्तता हूँ।** मुनिराज अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, मैं तो चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप, वीतरागस्वरूप आत्मा, उसमें मैं तो वर्तता हूँ। उसमें मैं तो चारित्र-चरना अर्थात् रमना। उसमें रमता हूँ, वह मेरा चारित्र और वह मेरा प्रत्याख्यान है। आहाहा! निश्चय की बात दूसरे को ऐसी लगती है कि यह तो एकान्त है। व्यवहार तो था परन्तु व्यवहार बीच में नहीं आता? व्यवहार पररूप से है पररूप से अनन्त है। राग से लेकर पररूप से अनन्त है। वह जाननेयोग्य है। वह व्यवहाररूप से जाननेयोग्य है। आहाहा!

परन्तु चैतन्यस्वरूप ऐसा जो आत्मा, उसे चैतन्यस्वरूप आत्मा से ही, चैतन्यस्वरूप आत्मा से ही... आहाहा! **निरन्तर वर्तता हूँ।** आहाहा! लिखते हैं उस समय विकल्प है, तथापि मैं तो वहाँ वर्तता हूँ। विकल्प का तो ज्ञान करता हूँ। आहाहा! विकल्प तो पररूप से है, ऐसा ज्ञान करता हूँ। मेरा वर्तना तो रागरहित स्वरूप में वर्तना, वह मेरा स्वरूप है। आहाहा! लिखते समय ऐसा कहते हैं। लिखने की क्रिया मेरी नहीं है। आहाहा! वह तो परमाणु की पर्याय की क्रिया है। आहाहा! लिखने में विकल्प उठे, वह क्रिया मेरी नहीं है। वह पर में जाती है। पर से भिन्न मेरा चैतन्यस्वरूप आत्मा, उस आत्मा से अर्थात् चैतन्यस्वरूप ऐसे आत्मा से ही मैं उसमें वर्तता हूँ। चैतन्यस्वरूप आत्मा, चैतन्यस्वरूप आत्मा से ही वर्तता हूँ। आहाहा! भाषा तो गजब की है! अन्दर वाच्य क्या है? यह तो शब्द हैं। वाच्य अन्दर पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान—ऐसा जो चैतन्य का स्वरूप, वह आत्मा, उस आत्मा से अर्थात् चैतन्यस्वरूप आत्मा से वर्तना; राग से नहीं, विकल्प से नहीं, निर्विकल्परूप से आत्मा में वर्तना, इसका नाम प्रत्याख्यान है। ऐसी बात है।

लो, इसमें अर्थ क्या करते होंगे? वस्तु ऐसी है। वस्तुस्थिति जहाँ ऐसी है। वस्तु की मर्यादा, स्वभाव। स्व अर्थात् अपना भाव। ज्ञान, शान्ति, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, यह स्व है, अपना भाव है और दया, दान, विकल्प, वह तो स्वभाव नहीं; वह तो परभाव है। आहाहा! परभाव है, उसे जानकर स्वभाव में मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा में चैतन्यस्वरूप

आत्मा से वर्तता हूँ। आहाहा! ऐसा काम है। इसका नाम प्रत्याख्यान। आठ उपवास करे, रात्रिभोजन त्याग करे, शोभायात्रा निकाले... ओहोहो! आठ उपवास किये, पश्चात् दान करे, वहाँ दो, चार, पाँच, दस हजार, पच्चीस हजार खर्च करे। आहाहा! वह तो बाहर की चीज़ है। खर्च करना या न खर्च करना, वह क्रिया आत्मा के अधिकार की नहीं है। यह राग की मन्दता होना या तीव्रता होना, वह उसके उल्टे पुरुषार्थ की बात है। आहाहा! उल्टे पुरुषार्थ में पर का करना, यह नहीं आता। उल्टे पुरुषार्थ में शरीर का या पर का करना, यह नहीं आता। उल्टे पुरुषार्थ में राग मेरा, (ऐसा) भ्रम और राग यह उल्टे पुरुषार्थ में आता है। आहाहा! सुल्टे पुरुषार्थ में वीतरागता और सम्यग्दर्शन आते हैं। आहाहा! इस सम्यग्दर्शन में मैं वर्तता हूँ। आत्मा चैतन्यस्वरूप है, ऐसी प्रतीति का अनुभव और उसमें मैं वर्तता हूँ। यह वर्तता हूँ, वह चारित्र है। वर्तता हूँ, यह प्रत्याख्यान है। आहाहा! है ?

## श्लोक-१२७

तथाहि ह्न

**और (इस ९५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं):—**

(मंदाक्रांता)

**सम्यग्दृष्टिस्त्यजति सकलं कर्म-नोकर्म-जातं,**
**प्रत्याख्यानं भवति नियतं तस्य सञ्ज्ञानमूर्तेः।**
**सच्चारित्राण्यघकुलहराण्यस्य तानि स्युरुच्चैः,**
**तं वन्देऽहं भव-परिभव-क्लेशनाशाय नित्यम्।।१२७।।**

(वीरछन्द)

**जो सुदृष्टि सब कर्म और नोकर्म पुञ्ज परित्याग करे।**
**सम्यग्ज्ञान मूर्ति उस ज्ञानी को नित प्रत्याख्यान वरे॥**

**पापसमूह विनाशक सत् चारित्र उसे अतिशय होता।**
**भव-भव के दुख नाश हेतु मैं नित्य उसे वन्दन करता॥१२७॥**

**[ श्लोकार्थ : ] जो सम्यग्दृष्टि समस्त कर्म-नोकर्म के समूह को छोड़ता है, उस सम्यग्ज्ञान की मूर्ति को सदा प्रत्याख्यान है और उसे पापसमूह का नाश करनेवाले ऐसे सत्-चारित्र अतिशयरूप से हैं। भव-भव के क्लेश का नाश करने के लिए उसे मैं नित्य वन्दन करता हूँ॥१२७॥**

## श्लोक -१२७ पर प्रवचन

**और ( इस ९५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं ):—**

**सम्यग्दृष्टिस्त्यजति सकलं कर्म-नोकर्म-जातं,**
**प्रत्याख्यानं भवति नियतं तस्य सज्ज्ञानमूर्तेः।**
**सच्चारित्राण्यघकुलहराण्यस्य तानि स्युरुच्चैः,**
**तं वन्देऽहं भव-परिभव-क्लेशनाशाय नित्यम्॥१२७॥**

पद्मप्रभमलधारिदेव टीकाकार कहते हैं। **जो सम्यग्दृष्टि...** जीव... आहाहा! शुद्ध पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, पूर्ण स्वरूप चैतन्य की जिसे दृष्टि और अनुभव है, वह सम्यग्दृष्टि जीव... आहाहा! **समस्त कर्म-नोकर्म के समूह को छोड़ता है,...** प्रत्याख्यान है न? समस्त। भगवान के प्रति भक्ति और प्रत्याख्यान, व्रत, नियम और समस्त विकल्प को छोड़ता है। व्यवहार के विकल्पों को-सबको छोड़ता है। आहाहा! **कर्म-नोकर्म के समूह को छोड़ता है, उस सम्यग्ज्ञान की मूर्ति को...** जो सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्दर्शन के अतिरिक्त रागादि सर्व विकल्पों को छोड़ता है... आहाहा! उस **सम्यग्ज्ञान की मूर्ति को सदा प्रत्याख्यान है...** उसे हमेशा प्रति समय प्रत्याख्यान है। आहाहा!

एक तो सम्यग्दर्शन है, तदुपरान्त उसमें वर्तता है। ऐसा कहा न? **नोकर्म के समूह को छोड़ता है,...** सम्यग्दृष्टि है और **कर्म-नोकर्म के समूह को छोड़ता है,...** कर्म में भावकर्म और द्रव्यकर्म दोनों आये। भावकर्म जो दया, दान, विकल्प है, उन्हें भी सम्यग्दृष्टि

छोड़ता है। आहाहा! **उस सम्यग्ज्ञान की मूर्ति को सदा प्रत्याख्यान है...** आहाहा! मुनिराज की बात करते हैं। दिगम्बर सन्त, मुनि उन्हें कहते हैं। सम्यग्दृष्टिसहित विकल्प आदि सर्व कर्म-नोकर्म को छोड़ता है, वह सम्यग्ज्ञान की मूर्ति है। आहाहा! राग और पुण्य-पाप का मूर्तिपना छोड़ दिया है। आहाहा! अकेला ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। ज्ञान और आनन्द के स्वरूप से है। मूर्ति अर्थात् यह।

**सदा प्रत्याख्यान है...** उसे तो सदा चौबीसों घण्टे प्रत्याख्यान है। एक तो सम्यग्दृष्टि है, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का स्वरूप अनुभव में आया है और अनुभवपूर्वक भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म को लक्ष्य में से छोड़ता है और आत्मा के स्वभाव में रमता है, उसे हमेशा प्रत्याख्यान है। चौबीसों घण्टे प्रत्याख्यान है। सदा कहा न? चौबीसों घण्टे। नींद में भी? नींद में भी प्रत्याख्यान है? प्रत्याख्यान है। अन्दर में स्वरूप में रमणता, एकाग्रता, वह प्रत्याख्यान है। आहाहा! निद्रा-निद्रा पररूप से जानता है। निद्रा को पररूप से जानता है। आहाहा!

सम्यग्दर्शनसहित रागादि भावकर्म, नोकर्म, द्रव्यकर्म को छोड़ता है। वह सम्यग्ज्ञान की मूर्ति, वह सम्यग्ज्ञानस्वरूप भगवान, उसे हमेशा प्रत्याख्यान है। उसे चौबीसों घण्टे प्रत्याख्यान है। आहाहा! अब आहार करने जाए, आहार लेने जाए, नींद ले, तो भी कहते हैं जितना विकल्प हुआ, उसे जानता है परन्तु स्वरूप में स्थिर होता है। आहाहा! बहुत कठिन बात। सूक्ष्म बातें! सवेरे एक पूछा था हिन्दीवाले को। वह कहे समझ में आता था? हिन्दी भाषा में कहते थे न? कुछ-कुछ थोड़ा समझ में आता था। यह बात कहीं सुनने को मिलती नहीं। यह करो, यह करो, व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो, प्रतिक्रमण करो, बाह्य त्याग करो, यात्रा करो। बस, यह बात चलती हो। पूरे दिन और रात यही चलता है। आहाहा! अब उसे ऐसी सूक्ष्म बात... हिन्दी में चलती थी तो भी उसे बराबर समझ में नहीं आता था। आहाहा! सवेरे आया था न? बहुत सूक्ष्म बात।

अब आत्मा अर्थात् क्या? अब और आत्मा कैसा? कि चैतन्यस्वरूप। कैसा? - कि उसमें राग के विकल्प, दया, दान, व्रत का विकल्प भी नहीं, ऐसा वह आत्मा और अनन्त गुण जिसमें भरे हैं, ऐसा वह आत्मा। उस आत्मा को आत्मा द्वारा स्थिर होना; वह उस राग द्वारा नहीं, पुण्य द्वारा नहीं, व्यवहार-निमित्त द्वारा नहीं। आहाहा! आत्मा द्वारा

आत्मा में स्थिर होना, तो आत्मा वीतरागस्वरूप है, वीतरागस्वरूपी आत्मा को वीतरागस्वरूपी आत्मा से वीतरागभाव से अन्दर स्थिर होना। आहाहा! उसे हमेशा प्रत्याख्यान है। कहो, चिमनभाई! ऐसी बात कहाँ सुनने को मिले? ऐई! यशपालजी! ऐसी बातें कठिन है। यह भव के अभाव की बातें, बापू! चौरासी के अवतार कर-करके, भाई! चौरासी लाख योनि के अवतार, भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं थे - कैसे कहा जाए।

अनन्त काल गया... आहाहा! अरे रे! एक-एक भव में जिसने हिरण को जैसे सिंह आकर फाड़कर खाये, जीवित खाये। आहाहा! ऐसे अनन्त भव किये हैं। आहाहा! नरक के दुःख का वर्णन तो परमात्मा कहते हैं। क्या दुःख का वर्णन करें। वह यह प्रभु! उस नरक में उसके दुःख का... आहाहा! महापाप करके नरक में गया, उसके दुःख का वर्णन करोड़ों भव में, करोड़ों जीभ से, क्षण के दुःख की व्याख्या-एक क्षण के दुःख की व्याख्या (नहीं हो सकती)। वह वेदन करता है, यह अस्ति है परन्तु वह क्या दुःख है और कितना कैसा है? वह करोड़ों भव में, करोड़ों जीभों से कहना कठिन है। अरे प्रभु! ऐसे अनन्त भव किये, अनन्त अवतार किये। सत्य बात आवे, तब निषेध किया। ऐसा नहीं होता, यह एकान्त है, अमुक है, अमुक है। ऐसा करके सत्य को टाल दिया। व्यवहार को लगा रहा। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि व्यवहार को लगा रहा, वह तो संसार है, राग है। आहाहा!

यहाँ तो आत्मा को चैतन्यस्वरूप आत्मा को आत्मा द्वारा—ऐसा कहा न? आहाहा! यहाँ कहा - समस्त कर्म आदि छोड़कर सम्यग्ज्ञान की मूर्ति आत्मा को **सदा प्रत्याख्यान है...** आहाहा! **और उसे पापसमूह का नाश करनेवाले...** आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव, स्वरूप से पतित करनेवाले—ऐसे जो पाप के भाव, उसे **ऐसे सत्-चारित्र अतिशयरूप से हैं।** उसे सत्-चारित्र अतिशयरूप से है। आहाहा! पापसमूह का नाश करनेवाले यह। पुण्य और पाप के समूह का नाश करनेवाले **सत्-चारित्र अतिशयरूप से हैं।** आहाहा! मुनिदशा, परमेश्वरदशा। मुनिदशा अर्थात् परमेश्वर। पंच परमेष्ठी, आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं ऐसे साधु और गणधर... आहाहा! भविष्य में मुनि होंगे उन्हें भी गणधर, वर्तमान नमस्कार करते हैं। आहाहा!

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती, तीनों काल में वर्तते हुए। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। तीनों काल में वर्तते हुए। आहाहा! ऐसी दशा में वर्तते हुए, उन्हें मेरा

नमस्कार। गणधर शास्त्र रचें तो उन्हें पंच नमस्कार पहले करके रचते हैं। यह कितनी महत्त्व की बात होगी! आहाहा! पाँच परमेष्ठी अर्थात् कौन? बापू! आहाहा! गजब बात है। और अभी तो साधारण ऐरे-गैरों को खतौनी कर डालना। साधुपना वस्त्र छोड़ा और जरा नग्न हुआ और पाँच महाव्रत के नाम लिये, वहाँ हो गया साधु। बापू! यह साधुपना नहीं है। वह परमेश्वरपद है, जिसे गणधर का नमस्कार पहुँचता है। वह कहते हैं, देखो न! आहाहा!

**पापसमूह का नाश करनेवाले ऐसे सत्-चारित्र अतिशयरूप से हैं।** आहाहा! सत्-चारित्र। बाहर का सदाचार, वह नहीं। सत्-चारित्र, सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा का चारित्र। सत् ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप—ऐसा सत्, उसका चारित्र। आहाहा! **सत्-चारित्र अतिशयरूप से हैं।** रागादि का नाश करने के लिये ऐसे सत्-चारित्र है। **भव-भव के क्लेश का नाश करने के लिये...** आहाहा! भव-भव के भय का, **भव-भव के क्लेश का...** आहाहा! यहाँ ऐसा नहीं लिया कि नरक और तिर्यंच के ही भव। यह तो भव-भव के क्लेश। स्वर्ग में भी क्लेश है, राग का दुःख है। आहाहा! यह रागी है। रागवाला दुःख समकिती को भी (जितना) राग है, उतना उसे दुःख है। आहाहा!

**भव-भव के क्लेश का नाश करने के लिए...** चार गति के भव, ये चारों ही गति के भव तो क्लेश के कारण हैं। आहाहा! उस **क्लेश का नाश करने के लिए उसे मैं...** किसे? जो सत्-चारित्र, पाप का नाश करनेवाला अतिशयरूप से वर्तता है, **उसे मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** मुनिराज कहते हैं, **उसे मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** स्वयं मुनि हैं। आहाहा! तीन कषाय का अभाव है, मुनि हैं। एक बात की थी न! ज्ञान की बात करते हुए, भावी तीर्थंकर की बात की। केवली की बात नहीं की। भावी तीर्थंकर का ज्ञान ऐसा होता है, ऐसी बातचीत की। कहा था न? चेतनजी! भावी तीर्थंकर। कौन सा पृष्ठ? २१२ कलश। **यदि शुद्धदृष्टिवन्त (-सम्यग्दृष्टि) जीव ऐसा समझता है कि परम मुनि को तप में, नियम में, संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है (अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है) तो (ऐसा सिद्ध हुआ कि) राग के नाश के कारण अभिराम ऐसे उस भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ...** देखा? केवली नहीं लिये। वे भावी केवली लेना चाहिए। यहाँ शब्द यह लिया है। आहाहा! **भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता निश्चित है।** आहाहा! केवली को नहीं लिया। तीर्थाधिनाथ को

लिया। उनकी ध्वनि स्वयं की पुकार है। आहाहा! वे स्वयं मानो भावी तीर्थंकर होनेवाले हों, उसकी पुकार है। पंच परमेष्ठी में मुनि हैं। अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते हैं। आहाहा! वे कहते हैं कि **भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता...** वीतरागता। केवली को वीतरागता होती है, ऐसा नहीं लिया। तीर्थाधिनाथ को वीतरागता होती है, ऐसा लिया। इतना बदला है। आहाहा!

यह पढ़कर मस्तिष्क में ऐसा आया था कि ये तीर्थंकर होनेवाले लगते हैं। पढ़ते हुए आया था, कि यह केवली न लेकर तीर्थंकर लिये। केवली निश्चित समता वीतरागवाले हैं। भावी तीर्थनाथ को, तीर्थंकरों को लिया। ...ऐसा सब है। अलौकिक है। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, आचार्य नहीं। भले मुनि हों, आचार्य हों, साधु हों, सब पंच परमेष्ठी हैं। आहाहा! तीर्थाधिनाथ को परम वीतरागता वर्तती है। निश्चित समता वर्तती है। आहाहा! वीतरागता वर्तती है। आहाहा!

उस **भव-भव के क्लेश का नाश करने के लिए उसे मैं...** इस कारण से उसे मैं... इसलिए अर्थात् इस कारण से **उसे मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** उसे मेरा वन्दन नित्य है। आहाहा! ९६ गाथा आयी न?

## गाथा-९६

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी।।९६।।

केवलज्ञानस्वभावः केवलदर्शनस्वभावः सुखमयः।
केवलशक्तिस्वभावः सोऽहमिति चिन्तयेत् ज्ञानी।।९६।।

अनन्तचतुष्टयात्मकनिजात्मध्यानोपदेशोपन्यासोऽयम्। समस्तबाह्यप्रपञ्चवासनाविनिर्मुक्तस्य निरवशेषेणान्तर्मुखस्य परमतत्त्वज्ञानिनो जीवस्य शिक्षा प्रोक्ता। कथं कारकं?

साद्यनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसद्भूतव्यवहारेण, शुद्धस्पर्शरसगन्धवर्णानामाधार-भूतशुद्धपुद्गलपरमाणुवत्केवलज्ञानकेवलदर्शनकेवलसुखकेवलशक्तियुक्तपरमात्मा यः सोऽहमिति भावना कर्तव्या ज्ञानिनेति; निश्चयेन सहजज्ञानस्वरूपोऽहं, सहजदर्शनस्वरूपोऽहं, सहजचारित्रस्वरूपोऽहं, सहजचिच्छक्तिस्वरूपोऽहं इति भावना कर्तव्या चेति।

तथा चोक्तमेकत्वसप्ततौ ह्न

( अनुष्टुप् )
केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।
तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्।।

---

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वही, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को॥९६॥

अन्वयार्थ : [ केवलज्ञानस्वभावः ] केवलज्ञानस्वभावी, [ केवलदर्शन-स्वभावः ] केवलदर्शनस्वभावी, [ सुखमयः ] सुखमय और [ केवलशक्तिस्वभावः ] केवलशक्तिस्वभावी [ सः अहम् ] वह मैं हूँ—[ इति ] ऐसा [ ज्ञानी ] ज्ञानी [ चिंतयेत् ] चिन्तवन करते हैं।

टीका : यह, अनन्त चतुष्टयात्मक निज आत्मा के ध्यान के उपदेश का कथन है।

समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त, निरवशेषरूप से अन्तर्मुख परमतत्त्व-ज्ञानी जीव को शिक्षा दी गयी है। किस प्रकार? इस प्रकारः—सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत

**शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति, जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख तथा केवलशक्तियुक्त परमात्मा, सो मैं हूँ, ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए; और निश्चय से, मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ, मैं सहजदर्शनस्वरूप हूँ, मैं सहजचारित्रस्वरूप हूँ तथा मैं सहजचित्शक्तिस्वरूप हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिए।**

**इसी प्रकार एकत्वसप्तति में ( -श्री पद्मनन्दि-आचार्यवरकृत, पद्मनन्दिपंचविंशति के एकत्वसप्तति नामक अधिकार में २०वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि: —**

( वीरछन्द )

**परम तेज वह केवलदर्शन केवलज्ञानरु सौख्य स्वभाव।**
**उसे जानते हुए न जाना-देखा और सुना नहीं क्या ?॥**

**[ श्लोकार्थः ] वह परम तेज केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलसौख्यस्वभावी है। उसे जानते हुए क्या नहीं जाना ? उसे देखते हुए क्या नहीं देखा ? उसका श्रवण करते हुए क्या नहीं सुना ?**

---

गाथा - ९६ पर प्रवचन

---

**केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ।**
**केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी।।९६।।**

'**चिंतए**' शब्द आया। '**चिंतए**' अर्थात् विकल्प ही है, ऐसा कुछ नहीं है। अन्दर एकाग्र हुआ इस भाव से। आहाहा!

**कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।**
**मैं हूँ वही, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को॥९६॥**

आहाहा! **यह, अनन्त चतुष्टयात्मक निज आत्मा के ध्यान के उपदेश का कथन है।** आत्मा निज चतुष्टयस्वरूप भरपूर है। अभी। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य से भरपूर यह भगवान है। आहाहा! केवली को अनन्त चतुष्टय जो प्रगट होता है। अनन्त-अनन्त आनन्द आदि प्रगट होता है, वह कहाँ से प्रगट होता है ? वह कहीं बाहर से आता है ? अन्दर में अनन्त चतुष्टय शक्ति पड़ी है, उसमें से बाहर आता है। आहाहा! तो अनन्त आत्माएँ अनन्त चतुष्टयमय विराजमान हैं। शक्ति से और स्वभाव से

तो सब भगवान आत्माएँ अनन्त चतुष्टयमय विराजमान हैं। उसकी व्याख्या / चिन्तवन मुनि ऐसी करते हैं कि धर्मात्मा ऐसा चिन्तन करते हैं। आहाहा!

**समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त, निरवशेषरूप से अन्तर्मुख परमतत्त्व-ज्ञानी जीव को शिक्षा दी गयी है।** ऐसे जीव को शिक्षा दी गयी है। अर्थात् उसे भी ज्ञान कराते हैं। **समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त,...** है। व्यवहार से, विकल्प से विमुक्त है। **निरवशेषरूप से...** कुछ बाकी रखे बिना **अन्तर्मुख परमतत्त्व-ज्ञानी...** अन्तर्मुख परमात्मा, आत्मा जहाँ विराजता है, अन्दर परमात्मा स्वयं ही आत्मा है। आहाहा! परमेश्वर है, वीतराग है, केवली है। केवलदर्शन है, आनन्द है, केवल वीर्य है, पूर्ण अनन्त चतुष्टयरूप जो विराजमान भगवान आत्मा अन्दर है।

ऐसे तत्त्वज्ञानी **जीव को शिक्षा दी गयी है। किस प्रकार? इस प्रकारः—सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति,...** दृष्टान्त देते हैं। जो परमाणु है, **सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति,...** यह तो शुद्ध परमाणु की भाँति है। **जो केवलज्ञान,...** आहाहा! केवलज्ञान शुद्धसद्भूतव्यवहार से है। निश्चय से तो केवलज्ञान त्रिकाल में भरा है। प्रगट पर्याय है, वह तो सद्भूतव्यवहार है। आहाहा!

**अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से, शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति,...** पुद्गल परमाणु, वह भी शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से ऐसा कहने में आया। उसकी भाँति यह भगवान जो केवलज्ञान है, वह शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से पर्याय में केवलज्ञान है। आहाहा! अन्तर में है, वह त्रिकाली निश्चय से है। **जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख तथा केवलशक्तियुक्त परमात्मा, सो मैं हूँ, ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;...** आहाहा! मैं तो त्रिकाली ज्ञान-केवलज्ञान हूँ। त्रिकाली केवलदर्शन हूँ, त्रिकाली केवल सुख हूँ, केवल शक्ति वीर्य, परमात्मा, वह मैं हूँ—ऐसा ज्ञानी को भावना करना चाहिए। प्रगट करने के लिये यह भावना करना चाहिए। आहाहा! शक्तिरूप से तो है ही। प्रगट करने के लिये धर्मात्मा को यह भावना करना चाहिए।

विशेष कहेंगे.... ( ***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)